Chapter नब्बे

भगवान् कृष्ण की महिमाओं का सारांश

इस अध्याय में बतलाया गया है कि भगवान् कृष्ण ने किस तरह अपनी रानियों के साथ द्वारका की सरोवरों में विहार किया। इसमें रानियों द्वारा उनके उत्कट विरह से उत्पन्न भावपूर्ण स्तुतियाँ भी हैं और भगवान् की लीलाओं का सार-समाहार भी हुआ है।

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका स्थित अपनी ऐश्वर्यशाली राजधानी में यदुओं तथा अपनी रानियों के साथ रहते रहे। वे महल के भीतर बने तालाबों में अपनी पत्नियों के साथ पिचकारी से उन पर जल छिड़क कर तथा छिड़काकर क्रीड़ा का आनन्द लेते। वे अपने शालीन संकेतों, प्रेमपूर्ण वचनों तथा दीर्घ

चितवनों से उनके हृदयों को मुग्ध करते। इस तरह से रानियाँ उन्हीं के विचारों में निमग्न रहतीं। कभी कभी भगवान् से जल-क्रीड़ा कर चुकने के बाद, वे विविध प्राणियों को यथा कुररी और चक्रवाक पक्षियों, समुद्र, चन्द्रमा, बादल, कोयल, पर्वत, नदी इत्यादि को सम्बोधित करके कहतीं कि श्रीकृष्ण से उनकी आसक्ति प्रगाढ़ है। ऐसा कह कर वे इन प्राणियों से सहानुभूति प्रकट करना चाहती थीं।

श्रीकृष्ण ने प्रत्येक रानी के गर्भ से दस-दस पुत्र उत्पन्न किये। इनमें से प्रद्युम्न सर्व प्रमुख था, जो समस्त दिव्य गुणों में अपने पिता के ही समान था। प्रद्युम्न ने रुक्मी की कन्या से विवाह किया, जिसके गर्भ से अनिरुद्ध ने जन्म लिया। तब अनिरुद्ध ने रुक्मी की नातिन से विवाह किया, जिससे वज्र उत्पन्न हुआ, जो प्रभास में छिड़े लौह-गदा-युद्ध में बचा एकमात्र यदु-कुमार था। वज्र से ही शेष यदुवंश चला, जिसमें प्रतिबाहु सर्वप्रथम था। इस यदुवंश के सदस्य असंख्य हैं। यदुओं को अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए ३,८८,००,००० शिक्षक लगाने पड़े थे।

भगवान् कृष्ण के प्रकट होने के पूर्व संसार के लोगों को सताने तथा ब्राह्मण-संस्कृति को विनष्ट करने के लिए अनेक राक्षसों ने मानव-परिवारों में जन्म लिया था। उनका दमन करने के लिए भगवान् ने देवताओं को यदुवंश में अवतार लेने के लिए आदेश दिया, जो १०१ जातियों में फैल गया। सारे यदु श्रीकृष्ण को भगवान् मानते थे और उन पर अटूट श्रद्धा रखते थे। विश्राम, भोजन, भ्रमण इत्यादि करते समय, वे प्राय: उनके संग ही रहते थे और अपने दिव्य सुख में अपने शरीरों को भूल जाते थे।

दसवें स्कंध का समापन निष्ठावान श्रोता की सफलता के लिए इस वचन के साथ होता है : ''अधिकाधिक निष्ठा के साथ भगवान् मुकुन्द की सुन्दर कथाओं का नियमित श्रवण, कीर्तन तथा ध्यान करने से मर्त्य जीव को भगवद्धाम प्राप्त होगा, जहाँ काल की अमोघ शक्ति का कोई भय नहीं है।''

श्रीशुक उवाच

सुखं स्वपुर्यां निवसन्द्वारकायां श्रिय: पति: ।
सर्वसम्पत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवै: ॥ १ ॥
स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकान्तिभि: ।
कन्दुकादिभिर्हर्म्येषु क्रीडन्तीभिस्तडिद्द्युभि: ॥ २ ॥
नित्यं सङ्कुलमार्गायां मदच्युद्भिर्मतङ्गजै: ।
स्वलङ्कृतैर्भटैरश्वै रथैश्च कनकोज्वलै: ॥ ३ ॥

उद्यानोपवनाढ्यायां पुष्पितद्रुमराजिषु ।
निर्विशद्भृङ्गविहगैर्नादितायां समन्ततः ॥ ४॥
रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनां एकवल्लभः ।
तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गेहेषु महर्द्धिषु ॥ ५॥
प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकुमुदाम्भोजरेणुभिः ।
वासितामलतोयेषु कूजद्द्विजकुलेषु च ॥ ६॥
विजहार विगाह्याम्भो ह्रदिनीषु महोदयः ।
कुचकुङ्कुमलिप्ताङ्गः परिरब्धश्च योषिताम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सुखम्—सुखपूर्वक; स्व—अपनी; पुर्याम्—नगरी में; निवसन्—निवास करते हुए; द्वारकायाम्—द्वारका में; श्रियः—लक्ष्मी के; पतिः—पति; सर्व—समस्त; सम्पत्—ऐश्वर्यमय गुणों में; समृद्धायाम्—सम्पन्न था; जुष्टायाम्—आबाद; वृष्णि-पुङ्गवैः—सर्वप्रमुख वृष्णियों द्वारा; स्त्रीभिः—स्त्रियों द्वारा; च—तथा; उत्तम—उत्तम; वेषाभिः—वेश वाली; नव—नवीन; यौवन—यौवन की; कान्तिभिः—सुन्दरता द्वारा; कन्दुक-आदिभिः—गेंदों तथा अन्य खिलौनों से; हर्म्येषु—छतों पर; क्रीडन्तीभिः—खेलती हुई; तडित्—बिजली जैसे; द्युभिः—तेज से; नित्यम्—सदैव; सङ्कुल—भीड़-भाड़ से भरी हुई; मार्गायाम्—जिसकी सड़कें; मद-च्युद्भिः—मद चुआते; मतम्—उन्मत्त; गजैः—हाथियों से; सु—अच्छी तरह; अलङ्कृतैः—सुसज्जित; भटैः—पैदल सैनिकों से; अश्वैः—घोड़ों से; रथैः—रथों से; च—तथा; कनक—सोने से; उज्ज्वलैः—चमकीले; उद्यान—बगीचों; उपवन—तथा पार्कों से; आढ्यायाम्—युक्त; पुष्पित—फूले हुए; द्रुम—वृक्षों की; राजिषु—पंक्तियों से; निर्विशत्—प्रवेश करते; भृङ्ग—भौंरों; विहगैः—तथा पक्षियों से; नादितायाम्—गुञ्जरित; समन्ततः—चारों ओर; रेमे—रमण किया; षोडश—सोलह; साहस्र—हजार; पत्नीनाम्—पत्नियों के; एक—एकमात्र; वल्लभः—प्रियतम; तावत्—उतने ही; विचित्र—विविध; रूपः—रूपों वाला; असौ—वह; तत्—उनके; गेहेषु—घरों में; महा-ऋद्धिषु—अत्यधिक सजे-धजे; प्रोत्फुल्ल—खिले हुए; उत्पल—कमलिनियों; कह्लार—श्वेत कमल; कुमुद—रात में खिलने वाले कमल; अम्भोज—तथा दिन में खिलने वाले कमलों के; रेणुभिः—पराग से; वासिता—सुगन्धित; अमल—निर्मल; तोयेषु—जल में; कूजत्—कूकते हुए; द्विज—पक्षियों के; कुलेषु—झुंडों में; च—तथा; विजहार—क्रीड़ा की; विगाह्य—डुबकी लगाकर; अम्भः—जल में; ह्रदिनीषु—नदियों में; महा-उदयः—सर्वशक्तिमान भगवान्; कुच—उनके स्तनों से; कुङ्कुम—लाल रंग के अंगराग, गेरू; लिप्त—लेप किया हुआ; अङ्गः—उनका शरीर; परिरब्धः—आलिंगित; च—तथा; योषिताम्—स्त्रियों द्वारा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : लक्ष्मीपति भगवान् सुखपूर्वक अपनी राजधानी द्वारका पुरी में रहने लगे, जो समस्त ऐश्वर्यों से युक्त थी और गण्य-मान्य वृष्णियों तथा आलंकारिक वेशभूषा से सजी उनकी पत्नियों द्वारा आबाद थी। जब ये यौवन-भरी सुन्दर स्त्रियाँ शहर की छतों पर गेंद तथा अन्य खिलौने खेलतीं, तो वे बिजली की चमक जैसी चमचमातीं। नगर के प्रमुख मार्गों में मद चुवाते उन्मत्त हाथियों और खूब सजे घुड़सवारों, खूब सजे-धजे पैदल सैनिकों तथा सोने से सुसज्जित चमचमाते रथों पर सवार सिपाहियों की भीड़ लगी रहती। शहर में पुष्पित वृक्षों की पंक्तियों वाले अनेक उद्यान तथा वाटिकाएँ थी, जहाँ भौंरे तथा पक्षी एकत्र होते और अपने गीतों से सारी दिशाओं को व्याप्त कर देते।

भगवान् कृष्ण अपनी सोलह हजार पत्नियों के एकमात्र प्रियतम थे। इतने ही रूपों में अपना विस्तार करके, उन्होंने प्रत्येक रानी के साथ उनके भरपूर सुसज्जित आवासों में रमण किया। इन

महलों के प्रांगण में निर्मल तालाब थे, जो खिले हुए उत्पल, कह्लार, कुमुद तथा अम्भोज कमलों के पराग-कणों से सुगन्धित थे और कूजते हुए पक्षियों के झुडों से भरे थे। सर्वशक्तिमान प्रभु इन तालाबों में तथा विविध नदियों में प्रवेश कर जल-क्रीड़ा का आनन्द लूटते और उनकी पत्नियाँ उनका आलिंगन करतीं, जिससे उनके स्तनों पर लेपित लाल कुंकम उनके शरीर पर लग जाता।

तात्पर्य : वैष्णव लेखकों ने अपनी काव्य रचना के लिए नियम बना रखा है *मधुरेण समापयेत्*—किसी भी साहित्यिक कृति का समापन विशिष्ट मधुर रस से किया जाना चाहिए। दिव्य कथाओं के सर्वाधिक मधुर वक्ता श्रील शुकदेव गोस्वामी ने तदनुसार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के इस अन्तिम अध्याय में द्वारका के मनोहारी वातावरण में भगवान् कृष्ण के रमणीय जल-विहार दृश्य के पश्चात् रानियों की उल्लासजनक स्तुतियाँ प्रस्तुत की हैं।

उपगीयमानो गन्धर्वैर्मृदङ्गपणवानकान् ।
वादयद्भिर्मुदा वीणां सूतमागधवन्दिभिः ॥ ८ ॥
सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसन्तीभिः स्म रेचकैः ।
प्रतिषिञ्चन्विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

उपगीयमानः—गीतों द्वारा प्रशंसित; गन्धर्वैः—गन्धर्वों द्वारा; मृदङ्ग-पणव-आनकान्—मृदंग, पणव तथा आनक नामक ढोलों; वादयद्भिः—बजा रहे; मुदा—हर्षपूर्वक; वीणाम्—वीणाओं को; सूत-मागध-वन्दिभिः—सूतों, मागधों तथा वन्दियों द्वारा; सिच्यमानः—भिगोई जा रही; अच्युतः—भगवान् कृष्ण; ताभिः—अपनी पत्नियों द्वारा; हसन्तीभिः—हँस रही; स्म—निस्सन्देह; रेचकैः—पिचकारियों से; प्रतिषिञ्चन्—उलट कर भिगोये जाते; विचिक्रीडे—उन्होंने क्रीड़ा की; यक्षीभिः—यक्षियों से; यक्ष-राट्—यक्षों के स्वामी (कुबेर); इव—सदृश।

जब गन्धर्वों ने हर्षपूर्वक मृदङ्ग, पणव *तथा आनक* नामक ढोलों के साथ उनकी प्रशंसा में गीत गाये एवं सूतों, मागधों तथा वन्दियों ने वीणा बजाकर उनकी प्रशंसा में कविताएँ सुनाईं, तो भगवान् कृष्ण अपनी पत्नियों के साथ जल-क्रीड़ा करने लगे। रानियाँ ठिठोली करती हुईं, उन पर पिचकारियों से पानी के फुहारे छोड़ती और वे भी प्रत्युत्तर में उन पर पानी छिड़क देते। इस प्रकार से कृष्ण ने अपनी रानियों के साथ उसी तरह क्रीड़ा की, जिस तरह यक्षराज 'यक्षी अप्सराओं' के साथ क्रीड़ा करता है।

ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः
सिञ्चन्त्य उद्धृतबृहत्कवरप्रसूनाः ।

कान्तं स्म रेचकजिहीर्षययोपगुह्य
जातस्मरोत्स्मयलसद्वदना विरेजुः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

ताः—वे (भगवान् कृष्ण की रानियाँ); क्लिन्न—भीगे; वस्त्र—वस्त्रों वाली; विवृत—खुली हुई; ऊरु—जाँघों; कुच—स्तन के; प्रदेशाः—भाग; सिञ्चन्त्यः—छिड़कते हुए; उद्धृत—बिखरे; बृहत्—विशाल; कवर—बालों की चोटी से; प्रसूनाः—फूल; कान्तम्—उनके प्रियतम को; स्म—निस्सन्देह; रेचक—उनकी पिचकारी; जिहीर्षयया—छीन लेने के विचार; उपगुह्य—आलिंगन करके; जात—उत्पन्न; स्मर—काम की इच्छा के; उत्स्मय—अट्टहास से; लसद्—चमकते; वदनाः—जिनके मुखमण्डल; विरेजुः—देदीप्यमान लग रहे थे।

रानियों के भीगे वस्त्रों के नीचे उनकी जाँघें तथा उनके स्तन दिख रहे थे। अपने प्रियतम पर जल छिड़कने से उनके विशाल जूड़ों से बँधे फूल बिखर गये। वे उनकी पिचकारी छीनने के बहाने, उनका आलिंगन कर लेती थीं। उनका स्पर्श करने से उनमें काम-भावना बढ़ जाती, जिससे उनके मुखमंडल हँसी से चमचमाने लगते। इस तरह कृष्ण की रानियाँ देदीप्यमान सौन्दर्य से चमचमा रही थीं।

कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुङ्कुमस्रक्-
क्रीडाभिषङ्गधुतकुन्तलवृन्दबन्धः ।
सिञ्चन्मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो
रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

कृष्णः—भगवान् कृष्ण ने; तु—तथा; तत्—उनके; स्तन—स्तनों से; विषज्जित—लिपटे हुए; कुङ्कुम—कुंकुम-चूर्ण; स्रक्—जिनकी फूल-माला; क्रीडा—क्रीड़ा में; अभिषङ्ग—लीन होने से; धुत—हिलाये गये; कुन्तल—बालों के गुच्छों के; वृन्द—समूह की; बन्धः—व्यवस्था, सज्जा; सिञ्चन्—छिड़कते हुए; मुहुः—बारम्बार; युवतिभिः—युवती स्त्रियों द्वारा; प्रतिषिच्यमानः—उलट कर छिड़के जाते हुए; रेमे—आनन्द लूटा; करेणुभिः—हथिनियों द्वारा; इव—सदृश; इभ-पतिः—हाथियों का राजा; परीतः—घिरा हुआ।

भगवान् कृष्ण की फूल-माला उनके स्तनों के कुंकुम से पुत गई और क्रीड़ा में लीन रहने के फलस्वरूप उनके बालों के बहुत-से गुच्छे अस्त-व्यस्त हो गये। जब भगवान् ने अपनी युवा प्रेमिकाओं पर बारम्बार जल छिड़का और उन्होंने भी उलटकर उन पर जल छिड़का, तो उन्होंने वैसा ही आनन्द लूटा, जिस तरह हाथियों का राजा हथिनियों के संग में आनंद लूटता है।

नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनाम् ।
क्रीडालङ्कारवासांसि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रियः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

नटानाम्—पुरुष नर्तकों को; नर्तकीनाम्—तथा स्त्री नर्तकियों को; च—तथा; गीत—गाने; वाद्य—तथा बाजे से; उपजीविनाम्—जीविका चलाने वाले; क्रीडा—अपने खिलवाड़ से; अलङ्कार—गहने; वासांसि—तथा वस्त्र; कृष्णः—भगवान् कृष्ण ने; अदात्—दे दिया; तस्य—उसका (अपना); च—तथा; स्त्रियः—पत्नियाँ।

तत्पश्चात्, भगवान् कृष्ण तथा उनकी पत्नियों ने जल-क्रीड़ा के दौरान अपने पहने हुए गहने तथा वस्त्र, उन नटों तथा नर्तकियों को दे दिये जो गाना गाकर तथा वाद्य बजाकर, अपनी जीविका कमाते थे।

कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितैः ।
नर्मक्ष्वेलिपरिष्वङ्गैः स्त्रीणां किल हृता धियः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

कृष्णस्य—कृष्ण के; एवम्—इस प्रकार; विहरतः—क्रीड़ा करते; गति—हिलने-डुलने; आलाप—बातचीत; ईक्षित—निहारने; स्मितैः—तथा हँसने से; नर्म—परिहास से; क्ष्वेलि—छेड़छाड़ से; परिष्वङ्गैः—तथा आलिंगन से; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; किल—निस्सन्देह; हृताः—चुराये गये; धियः—हृदय।

इस तरह भगवान् कृष्ण अपनी रानियों से क्रीड़ा करके और अपने हाव-भावों, बातों, चितवनों तथा हँसी से तथा अपने परिहास, छेड़छाड़ तथा आलिंगन द्वारा भी, उनके हृदयों को पूरी तरह मुग्ध कर लेते।

ऊचुर्मुकुन्दैकधियो गिर उन्मत्तवज्जडम् ।
चिन्तयन्त्योऽरविन्दाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥ १४॥

शब्दार्थ

ऊचुः—वे बोलीं; मुकुन्द—भगवान् कृष्ण; एक—एकमात्र; धियः—मन; गिरः—शब्द; उन्मत्त—उन्मादी व्यक्ति; वत्—सदृश; जडम्—जड़; चिन्तयन्त्यः—सोचते हुए; अरविन्द-अक्षम्—कमल जैसे नेत्र वाले प्रभु के विषय में; तानि—वे (शब्द); मे—मुझसे; गदतः—कह रहे; शृणु—सुनो।

रानियाँ भावमय आत्मविस्मृति में जड़ बन जातीं और उनके मन एकमात्र कृष्ण में लीन हो जाते। तब, वे अपने कमल नेत्र प्रभु के विषय में सोचती हुई इस तरह बोलतीं मानों पागल (उन्मादग्रस्त) हों। कृपया ये शब्द मुझसे सुनें, जैसे जैसे मैं उन्हें बतला रहा हूँ।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि भगवान् कृष्ण की रानियों में यह ऊपरी पागलपन का प्राकट्य मानो वे धतूरे या अन्य किसी भ्रांतिजनक औषधि से उन्मत्त हों वस्तुतः शुद्ध भगवद्प्रेम की क्रमिक छठी अवस्था की अभिव्यक्ति थी, जिसे *प्रेमवैचित्र्य* कहा जाता है। श्रील रूप गोस्वामी ने *उज्ज्वल नीलमणि* (१५.१३४) में इस अनुराग के प्रकार का उल्लेख किया है—

प्रियस्य सन्निकर्षेऽपि

प्रेमोत्कर्ष-स्वभावतः ।

या विश्लेष-धियार्तिस्तत्

प्रेमवैचित्र्यमुच्यते ॥

''जब कोई अपने उत्कट प्रेम के सहज उपजात के रूप में विरह के दुख को अपने प्रिय की उपस्थिति भी अनुभव करता है, तो यह अवस्था *प्रेमवैचित्र्य* कहलाती है।''

महिष्य ऊचुः
कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे
स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः ।
वयमिव सखि कच्चिद्गाढनिर्विद्धचेता
नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

महिष्यः ऊचुः—रानियों ने कहा; कुररि—हे कुररी पक्षी; विलपसि—विलाप करती हो; त्वम्—तुम; वीत—विहीन; निद्रा—नींद से; न शेषे—तुम विश्राम नहीं कर सकते; स्वपिति—सोती है; जगति—(कहीं) संसार में; रात्र्याम्—रात में; ईश्वरः—भगवान्; गुप्त—छिपे; बोधः—अता-पता; वयम्—हम; इव—जिस तरह; सखि—हे सखी; कच्चित्—क्या; गाढ—गहराई से; निर्विद्ध—बिंधा हुआ; चेताः—जिसका हृदय; नलिन—कमल (की तरह); नयन—जिसकी आँखें; हास—हँसती हुई; उदार—उदार; लीला—कौतुकपूर्ण; ईक्षितेन—चितवन से।

रानियों ने कहा : हे कुररी पक्षी, तुम विलाप कर रही हो। अब तो रात्रि है और भगवान् इस जगत में कहीं गुप्त स्थान में सोये हुए हैं। किन्तु हे सखी, तुम जगी हुई हो और सोने में असमर्थ हो। कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमारी ही तरह कमलनेत्र भगवान् की उदार कौतुक-भरी हँसीली चितवन से तुम्हारा हृदय अन्दर तक बिंध गया हो?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि रानियों के दिव्य उन्माद ने उनमें ऐसे आनंद भाव भर दिये कि उन्हें हर व्यक्ति और हर वस्तु में उनके भाव का ही प्रतिबिम्ब दिखने लगा था। यहाँ पर वे कुररी पक्षी को सम्बोधित कर रही हैं, जिसे वे कृष्ण के विरह में शोक करती हुई मानती हैं और संकेत करती हैं कि यदि सचमुच कृष्ण को उसकी या रानियों की चिन्ता होती, तो वे उस समय कहीं सुखपूर्वक सो न रहे होते। वे कुररी को आगाह करती हैं कि वह कृष्ण से अपने विलाप को सुनने तथा कुछ दया दिखाने की आशा न करे। यदि कुररी यह सोचती हो कि कृष्ण अपनी रानियों के साथ सो रहे हैं, तो वे यह कहकर इनकार करती हैं कि वे *गुप्त बोध* हैं—अर्थात् उनका अता-पता उन्हें ज्ञात नहीं है। वे इस रात में जगत में कहीं बाहर निकल गये हैं, किन्तु उन्हें यह पता नहीं कि वे उन्हें ढूँढ़ने

कहाँ जाँय। वे क्रन्दन करती हैं, ''हाय, प्रिय पक्षी! यद्यपि तुम सीधे-सादे प्राणी हो, किन्तु तुम्हारा हृदय हमारी ही तरह अन्दर तक बिंध गया है। अवश्य ही हमारे कृष्ण से तुम्हारा किञ्चित स्पर्श हुआ होगा। उनसे तुम्हारी निराशाजनक आसक्ति तुम्हारे द्वारा त्यागी क्यों नहीं जा रही?''

नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धु-
स्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि ।
दास्यं गत वयमिवाच्युतपादजुष्टां
किं वा स्रजं स्पृहयसे कवरेण वोढुम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

नेत्रे—आँखें; निमीलयसि—बन्द रखती हो; नक्तम्—रात्रि में; अदृष्ट—न देखा हुआ; बन्धुः—जिसका प्रेमी; त्वम्—तुम; रोरवीषि—क्रन्दन करती हो; करुणम्—करुणापूर्वक; बत—हाय; चक्रवाकि—हे चक्रवाकी; दास्यम्—दासता; गता—प्राप्त; वयम् इव—हमारी ही तरह; अच्युत—कृष्ण के; पाद—पैरों से; जुष्टाम्—आदरित; किम्—शायद; वा—अथवा; स्रजम्—फूल की माला को; स्पृहयसे—चाहती हो; कवरेण—अपने जूड़े में; वोढुम्—लगाने के लिए।

हे बेचारी चक्रवाकी, तुम अपनी आँखें मूँद कर भी अपने अदृष्ट जोड़े (साथी) के लिए रात-भर करुणापूर्वक बहकती रहती हो। अथवा कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमारी ही तरह तुम भी अच्युत की दासी बन चुकी हो और अपने जूड़े में उस माला को लगाना चाहती हो, जिसे वे अपने पाद-स्पर्श से धन्य कर चुके हैं?

भो भोः सदा निष्टनसे उदन्व-
न्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः ।
किम्वा मुकुन्दापहृतात्मलाञ्छनः
प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

भोः—प्रिय; भोः—प्रिय; सदा—सदैव; निष्टनसे—तुम निरन्तर उच्च ध्वनि करते हो; उदन्वन्—हे समुद्र; अलब्ध—न पाकर; निद्रः—नींद; अधिगत—अनुभव करते हुए; प्रजागरः—उन्निद्र रोग; किम् वा—अथवा शायद; मुकुन्द—कृष्ण द्वारा; अपहृत—चुराये गये; आत्म—निजी; लाञ्छनः—चिह्न; प्राप्ताम्—(हमारे द्वारा) प्राप्त; दशाम्—अवस्था को; त्वम्—तुम; च—भी; गतः—प्राप्त हुए हो; दुरत्ययाम्—मुक्त हो पाना असम्भव।

हे प्रिय समुद्र, तुम सदैव गर्जते रहते हो, रात में सोते नहीं। क्या तुम्हें उन्निद्र रोग हो गया है? या कहीं ऐसा तो नहीं है कि मुकुन्द ने हमारी ही तरह, तुमसे तुम्हारे चिन्ह छीन लिए हैं और तुम उन्हें फिर पाने में निराश हो?

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि यहाँ पर भगवान् कृष्ण की रानियाँ द्वारका को घेरने वाले समुद्र को क्षीर सागर समझ बैठती हैं, जिससे बहुत पहले लक्ष्मी तथा कौस्तुभ मणि निकले थे। इन्हें

भगवान् विष्णु ने छीन लिया था (*अपहृत*) और अब वे उनके वक्षस्थल में वास करते हैं। रानियाँ कल्पना करती हैं कि समुद्र एक बार फिर भगवान् के वक्षस्थल पर लक्ष्मी के वास तथा कौस्तुभ मणि के चिह्न देखने को इच्छुक है और वे यह कह कर सहानुभूति अभिव्यक्त करती हैं कि वे भी इन चिह्नों को देखना चाहती हैं। किन्तु रानियाँ तो भगवान् के वक्षस्थल पर कुंकुम चिह्न देखने की अधिक इच्छुक हैं, जिसे कृष्ण इनके स्तनों से लेते गये थे, जब इन्होंने उनका आलिंगन किया था।

त्वं यक्ष्मणा बलवतासि गृहीत इन्दो
क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि ।
कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं
विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; यक्ष्मणा—यक्ष्मा रोग से; बल-वता—शक्तिशाली; असि—हो; गृहीतः—पकड़े हुए; इन्दो—हे चन्द्रमा; क्षीणः—दुर्बल; तमः—अंधकार; न—नहीं; निज—अपनी; दीधितिभिः—किरणों से; क्षिणोषि—नष्ट करते हो; कच्चित्—क्या; मुकुन्द-गदितानि—मुकुन्द द्वारा कहे गये; यथा—जिस तरह; वयम्—हमको; त्वम्—तुम; विस्मृत्य—भुला कर; भोः—प्यारे; स्थगित—जड़ीभूत; गीः—जिसकी वाणी; उपलक्ष्यसे—प्रतीत होते हो; नः—हमको।

हे प्रिय चन्द्रमा, घोर यक्ष्मा रोग (क्षयरोग) से ग्रसित होने से तुम इतने क्षीण हो गये हो कि तुम अपनी किरणों से अंधकार को भगाने में असफल हो। या फिर कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम इसलिए अवाक् प्रतीत हो रहे हो, क्योंकि हमारी ही तरह तुम भी मुकुन्द द्वारा दिये गये, उत्साहप्रद वादों को स्मरण नहीं कर सकते हो?

किं न्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ।
गोविन्दापाङ्गनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; नु—निस्सन्देह; आचरितम्—किया कार्य; अस्माभिः—हमारे द्वारा; मलय—मलय पर्वत के; अनिल—हे वायु; ते—तुमको; अप्रियम्—अच्छी न लगने वाली; गोविन्द—कृष्ण की; अपाङ्ग—चितवनों द्वारा; निर्भिन्ने—विदीर्ण; हृदि—हृदयों में; ईरयसि—प्रेरणा दे रहे हो; नः—हमारी; स्मरम्—काम-वासना को।

हे मलय समीर, ऐसा हमने क्या किया है कि तुम हमसे अप्रसन्न हो और हमारे उन हृदयों में काम-भावना जागृत कर रहे हो, जो पहले ही गोविन्द की चितवनों से विदीर्ण हो चुके हैं?

मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनं
श्रीवत्साङ्कं वयमिव भवान्ध्यायति प्रेमबद्धः ।

अत्युत्कण्ठः शवलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः
स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसङ्गः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

मेघ—हे बादल; श्री-मन्—हे सम्मानित; त्वम्—तुम; असि—हो; दयितः—प्रिय मित्र; यादव-इन्द्रस्य—यादवों के प्रधान के; नूनम्—निश्चय ही; श्रीवत्स-अङ्कम्—श्रीवत्स नामक विशेष चिह्न धारण करने वाले (उनके वक्षस्थल पर); वयम्—हम; इव—जिस तरह; भवान्—आप; ध्यायति—ध्यान करते हैं; प्रेम—शुद्ध प्रेम द्वारा; बद्धः—बद्ध; अति—अत्यधिक; उत्कण्ठः—उत्सुक; शवल—किंकर्तव्यविमूढ़; हृदयः—जिसका हृदय; अस्मत्—जिस तरह हमारे (हृदय); विधः—उसी तरह से; बाष्प—आँसुओं की; धाराः—धाराएँ; स्मृत्वा स्मृत्वा—बारम्बार स्मरण करके; विसृजसि—आप मुक्त करते हैं; मुहुः—बारम्बार; दुःख—दुख; दः—देने वाले; तत्—उसके साथ; प्रसङ्गः—संगति।

हे पूज्य बादल, निसन्देह तुम यादवों के उन प्रधान के अत्यन्त प्रिय हो, जो श्रीवत्स का चिन्ह धारण किए हुए हैं। तुम भी हमारी ही तरह उनसे प्रेम द्वारा बद्ध हो और उनका ही चिन्तन करते हो। तुम्हारा हृदय हमारे हृदयों की ही तरह अत्यन्त उत्सुकता से किंकर्तव्यविमूढ़ है और जब तुम उनका बारम्बार स्मरण करते हो, तो आँसुओं की धारा बहाते हो। कृष्ण की संगति ऐसा ही दुख लाती है।

तात्पर्य : आचार्यों ने इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार से की है—बादल भगवान् कृष्ण के मित्र स्वरूप है, क्योंकि वह सूर्य की झुलसती किरणों से उनकी रक्षा करता है, अतः भगवान् के ऐसे सच्चे शुभचिन्तक को उनके कल्याण के बारे में निरन्तर ध्यान करना चाहिए। यद्यपि बादल भगवान् के नीले वर्ण में साथ देता है, किन्तु भगवान् कृष्ण के विशिष्ट लक्षण यथा उनका श्रीवत्स चिह्न, बादल के ध्यान को विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। किन्तु इसका परिणाम क्या निकलता है? मात्र दुख—बादल हताश होता है और वह वर्षा का बहाना करके निरन्तर आँसू बहाता रहता हैं। अतः रानियाँ उसे सलाह देती हैं, ''तुम्हारे लिए यही अच्छा होगा कि तुम कृष्ण में इतनी रुचि मत लो।''

प्रियरावपदानि भाषसे मृत-
सञ्जीविकयानया गिरा ।
करवाणि किमद्य ते प्रियं
वद मे वल्गितकण्ठ कोकिल ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

प्रिय—प्रिय; राव—उसका जिसकी ध्वनियाँ; पदानि—झंकारें; भाषसे—तुम कह रहे हो; मृत—मरे हुए; सञ्जीविकया—पुनः जीवित करने वाला; अनया—इसमें; गिरा—वाणी; करवाणि—मुझे करना चाहिए; किम्—क्या; अद्य—आज; ते—तुम्हारे लिए; प्रियम्—अच्छा लगने वाला; वद—कहो; मे—मुझसे; वल्गित—इन ध्वनियों से मधुरित; कण्ठ—कण्ठ वाले; कोकिल—हे कोयल।

रे मधुर कंठ वाली कोयल, तुम मृत को भी जीवित करनेवाली वह बोली बोल रही हो, जिसे

हमने एक बार अत्यन्त मधुरभाषी अपने प्रेमी से सुनी थी। कृपा करके मुझे बताओ कि मैं तुम्हें प्रसन्न करने के लिए आज क्या कर सकती हूँ?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि यद्यपि कोयल का गायन अत्यन्त सुहावना है, किन्तु भगवान् कृष्ण की पत्नियाँ इसे वेदनामयी अनुभव करती हैं, क्योंकि इससे उन्हें अपने प्रियतम कृष्ण की याद आ जाती है और उनकी विरह-पीड़ा बढ़ जाती हैं।

न चलसि न वदस्युदारबुद्धे
क्षितिधर चिन्तयसे महान्तमर्थम् ।
अपि बत वसुदेवनन्दनाङ्घ्रि
वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥ २२॥

शब्दार्थ

न चलसि—तुम हिलते-डुलते नहीं हो; न वदसि—न बोलते हो; उदार—उदार; बुद्धे—जिसकी बुद्धि; क्षिति-धर—हे पर्वत; चिन्तयसे—तुम सोचते हो; महान्तम्—महान्; अर्थम्—बात के विषय में; अपि बत—शायद; वसुदेव-नन्दन—वसुदेव के लाड़ले पुत्र को; अङ्घ्रिम्—पाँवों को; वयम्—हम; इव—जिस तरह; कामयसे—तुम चाहते हो; स्तनैः—तुम्हारे स्तनों (चोटियों) पर; विधर्तुम्—धारण करने के लिए।

हे उदार पर्वत, तुम न तो हिलते-डुलते हो, न बोलते-चालते हो। तुम अवश्य ही किसी अत्यन्त महत्त्व वाली बात पर विचार कर रहे होगे। अथवा क्या तुम हमारी ही तरह अपने स्तनों (शिखिरों) पर वसुदेव के लाड़ले के पाँवों को धारण करना चाहते हो?

तात्पर्य : *स्तनैः* शब्द, जिसका अर्थ ''अपने स्तनों पर'' है यहाँ पर्वत की चोटियों का सूचक हैं।

शुष्यद्धृदाः करशिता बत सिन्धुपत्न्यः
सम्प्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तुः ।
यद्वद्वयं मधुपतेः प्रणयावलोक-
मप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्म ॥ २३॥

शब्दार्थ

शुष्यत्—सूखती हुई; हृदाः—जिसकी झीलें; करशिताः—दुबली-पतली; बत—हाय; सिन्धु—समुद्र की; पत्न्यः—हे पत्नियों; सम्प्रति—अब; अपास्त—खोया हुआ; कमल—कमलों का; श्रीयः—तेज; इष्ट—प्रिय; भर्तुः—पति का; यद्वत्—जिस तरह; वयम्—हम; मधु-पतेः—मधु के स्वामी; प्रणय—प्रेम; अवलोकम्—झलक; अप्राप्य—न पाते हुए; मुष्ट—ठगी हुई; हृदयाः—हृदयों वाली; पुरु—पूरी तरह; कर्शिताः—विदीर्ण; स्म—हो गई हैं।

हे समुद्र-पत्नी नदियो, अब तुम्हारे कुण्ड सूख गये हैं। हाय! तुम एकदम दुबली हो गई हो और तुम्हारी कमलों की सम्पत्ति लुप्त हो गई है। तो क्या तुम हमारी तरह हो, जो इसलिए म्लान हो रही हैं, क्योंकि उन्हें हृदयों को ठगने वाले अपने प्रिय पति मधुपति की स्नेहिल चितवन नहीं

मिल रही?

तात्पर्य : ग्रीष्म ऋतु में नदियों को अपने पति रूपी समुद्र से बादलों के द्वारा वर्षा की झड़ी नहीं मिल पाती। किन्तु नदियों के सूखने का असली कारण रानियों के अनुसार यह है कि वे समस्त सुख के आगार भगवान् कृष्ण की प्रेममयी चितवन पाने में विफल रही हैं।

हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यङ्ग शौरेः कथां
दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा ।
किं वा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद्भजामो वयं
क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

हंस—हे हंस; सु-आगतम्—स्वागत है; आस्यताम्—आओ और बैठो; पिब—पियो; पयः—दूध; ब्रूहि—हमें बतलाओ; अङ्ग—हे प्रिय; शौरेः—शौरि के; कथाम्—समाचार; दूतम्—संदेशवाहक को; त्वाम्—तुम; नु—निस्सन्देह; विदाम—हम पहचानती हैं; कच्चित्—क्या; अजितः—अजेय; स्वस्ति—कुशलपूर्वक; आस्ते—है; उक्तम्—कहा हुआ; पुरा—बहुत पहले; किम्—क्या; वा—अथवा; नः—हमको; चल—चलायमान; सौहृदः—जिसकी मित्रता; स्मरति—स्मरण करता है; तम्—उसको; कस्मात्—किस कारण से; भजामः—पूजा करें; वयम्—हम; क्षौद्र—हे क्षुद्र के सेवक; आलापय—उसे आने के लिए कहो; काम—इच्छा; दम्—देनेवाला; श्रियम्—लक्ष्मी के; ऋते—बिना; सा—वह; एव—अकेले; एक-निष्ठा—एकान्त भाव के अनुसार; स्त्रियाम्—स्त्रियों में से।

हे हंस, स्वागत है। कृपया यहाँ बैठो और थोड़ा दूध पियो। हमें अपने प्रिय शूरवंशी के कुछ समाचार बतलाओ। हम जानती हैं कि तुम उनके दूत हो। वे अजेय प्रभु कुशल से तो हैं? क्या हमारा वह अविश्वसनीय मित्र अब भी उन शब्दों का स्मरण करता है, जिन्हें उसने बहुत काल पूर्व कहा था? हम उसके पास क्यों जाँय और उसकी पूजा क्यों करें? हे क्षुद्र स्वामी के सेवक, जाकर उससे कहो कि वह लक्ष्मी के बिना यहाँ आकर हमारी इच्छाएँ पूरी करे। क्या वही एकमात्र स्त्री है, जो उसके प्रति विशेषरूप से अनुरक्त हो गया है?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती रानियों तथा हंस के बीच हुई निम्नलिखित बातचीत सुनाते हैं—

रानियाँ पूछती हैं, ''क्या अजेय प्रभु सकुशल हैं?''

हंस उत्तर देता है, ''भला अपनी प्रिय पत्नियों के बिना कृष्ण कैसे कुशल से हो सकते है?''

''किन्तु क्या उसे स्मरण है, जो उसने एक बार हममें से एक, श्रीमती रुक्मिणी, से कहा था? क्या उसे स्मरण है कि उसने कहा था, ''मैं सारे महलों में तुम जैसी प्रिया अन्य कोई पत्नी नहीं देखता हूँ।''

(*भागवत* १०.६०.५५ *न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु पश्यामि*)

''हाँ, उन्हें यह सब याद है, इसीलिए उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है। तुम सब उनके पास जाओ और उनकी भक्ति में लगो।''

''यदि वह हमारे साथ रहने के लिए यहाँ आने से इनकार करता है, तो हम उसकी पूजा करने क्यों जायें?''

''किन्तु हे दयासिन्धो! वे तुम्हारी अनुपस्थिति से अत्यधिक कष्ट पा रहे हैं। वे इस कष्ट से कैसे बचाये जायें?''

''हे क्षुद्र स्वामी के सेवक! जरा सुनो तो, उसे यहाँ आने के लिए कहो, क्योंकि उसे आना चाहिए। यदि उसे कामेच्छा सता रही है, तो वह स्वयं दोषी हैं, क्योंकि काम-शक्ति का स्रष्टा वही है। हम आत्मसम्मान रखने वाली महिलाएँ उसकी माँग के सामने झुकने वाली नहीं हैं कि हम जाकर उसे ढूँढ़ें।''

''ऐसा ही हो, तब मैं विदा चाहूँगा।''

''नहीं, जरा एक मिनट! तुम यहाँ आने के लिए उसे कहो किन्तु लक्ष्मी के बिना, क्योंकि वह पूरे समय उसे अपने पास रख कर हमें सदैव ठगती है।''

''क्या तुम यह नहीं जानती कि लक्ष्मी देवी एकमात्र भगवान् के प्रति अनुरक्त हैं? भला वे उन्हें इस तरह क्यों छोड़ने लगे?''

''तो क्या संसार में वही एकमात्र ऐसी स्त्री है, जो उसके हाथ बिक चुकी है? हम कहाँ गईं?''

श्रीशुक उवाच
इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ।
क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम् ॥ २५॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस तरह कहते हुए; ईदृशेन—ऐसे; भावेन—भावपूर्ण प्रेम से; कृष्णे—कृष्ण के लिए; योग-ईश्वर—योग के स्वामियों के; ईश्वरे—स्वामी; क्रियमाणेन—आचरण करते हुए; माधव्यः—माधव की पत्नियों ने; लेभिरे—प्राप्त किया; परमाम्—चरम; गतिम्—गन्तव्य, लक्ष्य।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : योग के समस्त ईश्वरों के ईश्वर भगवान् कृष्ण के ऐसे भावमय प्रेम में बोलती तथा कार्य करती हुईं, उनकी प्रिय पत्नियों ने जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त किया।

तात्पर्य : आचार्य श्रील गोस्वामी के अनुसार यहाँ पर शुकदेव गोस्वामी *क्रियमाणेन* शब्द को

वर्तमान काल में यह सूचित करने के लिए प्रयुक्त करते हैं कि भगवान् की रानियों ने तुरन्त ही बिना विलम्ब उनके नित्य धाम को प्राप्त किया। इस अन्तर्दृष्टि से आचार्य इस झूठी कल्पना का निराकरण करते हैं कि इस लोक से कृष्ण के चले जाने पर कुछ आदिकालीन ग्वालों ने उनकी पत्नियों का तब अपहरण कर लिया, जब वे अर्जुन के संरक्षण में थीं। वस्तुत: जैसाकि स्वरूपसिद्ध वैष्णव टीकाकारों ने अन्यत्र व्याख्या की है भगवान् कृष्ण स्वयं ही उन चोरों के वेश में प्रकट हुए थे, जिन्होंने रानियों का अपहरण किया था। इस विषय पर अधिक जानकारी के लिए *श्रीमद्भागवत* (१.१५.२०) के श्रील प्रभुपाद द्वारा लिखित तात्पर्य को देखना चाहिए।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टिप्पणी है कि इन भद्र महिलाओं ने जो चरम गति प्राप्त की वह निर्विशेष योगियों की मुक्ति नहीं थी अपितु *प्रेम-भक्ति* की पूर्ण दशा थी। निस्सन्देह, चूँकि वे प्रारम्भ से दिव्य भगवत्प्रेम से ओतप्रोत थीं, अतएव उन्हें सच्चिदानन्द विग्रह प्राप्त था, जिसमें वे भगवान् की अन्तरंग मधुर लीलाओं के आदान-प्रदान का आनन्द प्राप्त कर सकती थीं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के मतानुसार, उनका भगवत्प्रेम *भावोन्माद* में बदल चुका था, जिस तरह गोपियों के प्रेम के साथ हुआ था, जब कृष्ण उनके रासनृत्य के बीच से ही अदृश्य हो गये थे। उस समय गोपियों ने पूर्ण भावोन्माद का अनुभव किया था, जिसको उन्होंने जंगल के विविध जन्तुओं से पूछताछ करते हुए तथा इन शब्दों द्वारा *कृष्णोऽहं पश्यत गतिम्* (मैं कृष्ण हूँ। देखो न, मैं कितने गौरव से चल रही हूँ।'' (*भागवत* १०.३०.१९) व्यक्त किया था। इसी तरह भगवान् द्वारकाधीश की प्रमुख पत्नियों के प्रेम-भाव या *विलास* ने उनमें *प्रेमवैचित्र्य* के लक्षण उत्पन्न किये, जिसे वे यहाँ प्रकट कर रही हैं।

श्रुतमात्रोऽपि य: स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मन: ।
उरुगायोरुगीतो वा पश्यन्तीनां च किं पुन: ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्रुत—सुना हुआ; मात्र:—केवल; अपि—भी; य:—जो (भगवान् कृष्ण); स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; प्रसह्य—बल से; आकर्षते—आकर्षित करता है; मन:—मनों को; उरु—अनेक; गाय—गीतों द्वारा; उरु—असंख्य प्रकारों से; गीत:—गाया हुआ; वा—दूसरी ओर; पश्यन्तीनाम्—उसे देखने वाली स्त्रियों के; च—तथा; किम्—क्या; पुन:—अधिक।

भगवान् जिनका महिमागान असंख्य गीतों द्वारा असंख्य प्रकार से होता हैं, वे उन समस्त स्त्रियों के मन को बलपूर्वक आकर्षित करते हैं, जो उनके विषय में श्रवण मात्र करती हैं। तो फिर उन स्त्रियों के विषय में क्या कहा जाय, जो प्रत्यक्ष रुप से उनका दर्शन करती हैं?

याः सम्पर्यचरन्प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः ।
जगद्गुरुं भर्तृबुद्ध्या तासां किम्वर्ण्यते तपः ॥ २७॥

शब्दार्थ

याः—जो; सम्पर्यचरन्—पूरी तरह सेवित; प्रेम्णा—शुद्ध प्रेम से; पाद—उनके पैर; संवाहन—मालिश; आदिभिः—इत्यादि के द्वारा; जगत्—ब्रह्माण्ड के; गुरुम्—गुरु को; भर्तृ—अपने पति रूप में; बुद्ध्या—प्रवृत्ति से; तासाम्—उनकी; किम्—कैसे; वर्ण्यते—वर्णन किया जा सकता है; तपः—तपस्या का।.

और उन स्त्रियों द्वारा, जिन्होंने शुद्ध प्रेमभाव से ब्रह्माण्ड के गुरु की सेवा की उनके द्वारा सम्पन्न महान् तपस्या का भला कोई कैसे वर्णन कर सकता है? उन्हें अपना पति मानकर, उन्होंने उनके पाँव दबाने जैसी घनिष्ठ सेवाएँ कीं।

एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन्सतां गतिः ।
गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत्पदम् ॥ २८॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; वेद—वेदों द्वारा; उदितम्—कहा गया; धर्मम्—धर्म; अनुतिष्ठन्—सम्पन्न करते हुए; सताम्—सन्त-भक्तों के; गतिः—लक्ष्य; गृहम्—घर; धर्म—धार्मिकता; अर्थ—आर्थिक विकास; कामानाम्—तथा इन्द्रिय-तृप्ति के; मुहुः—बारम्बार; च—तथा; आदर्शयत्—उन्होंने प्रदर्शित किया; पदम्—स्थान के रूप में।.

इस तरह वेदों द्वारा आदेशित कर्तव्यों का पालन करते हुए सन्त-भक्तों के लक्ष्य भगवान् कृष्ण ने बारम्बार प्रदर्शित किया कि कोई व्यक्ति घर पर किस तरह धर्म, आर्थिक विकास तथा नियमित इन्द्रिय-तृप्ति के लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है।

आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम् ।
आसन्षोडशसाहस्रं महिष्यश्च शताधिकम् ॥ २९॥

शब्दार्थ

आस्थितस्य—स्थित; परम्—सर्वोच्च; धर्मम्—धार्मिक सिद्धान्तों को; कृष्णस्य—कृष्ण के; गृह-मेधिनाम्—गृहस्थाश्रम वालों के; आसन्—थे; षोडश—सोलह; साहस्रम्—हजार; महिष्यः—रानियाँ; च—तथा; शत—एक सौ से; अधिकम्-प्लुस्.

धार्मिक गृहस्थ-जीवन के सर्वोच्च आदर्शों को पूरा करते हुए, भगवान् कृष्ण के १६,१०० से अधिक पत्नियाँ थीं।

तासां स्त्रीरत्नभूतानामष्टौ याः प्रागुदाहृताः ।
रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥ ३०॥

शब्दार्थ

तासाम्—उनमें से; स्त्री—स्त्रियों की; रत्न—रत्न या मणियों जैसी; भूतानाम्—थीं; अष्टौ—आठ; याः—जो; प्राक्—इसके पूर्व; उदाहृताः—वर्णित; रुक्मिणी-प्रमुखाः—रुक्मिणी इत्यादि; राजन्—हे राजा (परीक्षित); तत्—उनके; पुत्राः—पुत्र; च—भी; अनुपूर्वशः—उसी क्रम में।

इन रत्न जैसी स्त्रियों में से रुक्मिणी इत्यादि आठ प्रमुख रानियाँ थीं। हे राजन्, मैं पहले ही इनके पुत्रों के साथ-साथ इनका क्रमिक वर्णन कर चुका हूँ।

एकैकस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् ।
यावत्य आत्मनो भार्या अमोघगतिरीश्वरः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

एक-एकस्याम्—उनमें से प्रत्येक के; दश दश—दस-दस; कृष्णः—कृष्ण ने; अजीजनत्—उत्पन्न किया; आत्म-जान्—पुत्रों को; यावत्यः—जितनी; आत्मनः—उनकी; भार्याः—पत्नियाँ; अमोघ—कभी विफल न होने वाला; गतिः—जिसका प्रयास; ईश्वरः—भगवान्।

ऐसे भगवान् कृष्ण ने, जिनका प्रयास कभी विफल नहीं होता, अपनी हर एक पत्नी से दस-दस पुत्र उत्पन्न किये।

तात्पर्य : इस तरह कृष्ण के पुत्रों की कुल संख्या १,६१,०८० थी और उनकी प्रत्येक पत्नी से एक-एक पुत्री भी थी।

तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादश महारथाः ।
आसन्नुदारयशसस्तेषां नामानि मे शृणु ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तेषाम्—इन (पुत्रों) के; उद्दाम—असीम; वीर्याणाम्—जिनका पराक्रम; अष्टा-दश—अठारह; महा-रथाः—महारथों, सर्वोच्च श्रेणी के रथ-योद्धा; आसन्—थे; उदार—विस्तृत; यशसः—जिनकी ख्याति; तेषाम्—उनके; नामानि—नाम; मे—मुझसे; शृणु—सुनो।

इन असीम पराक्रम वाले पुत्रों में से अठारह महान् ख्याति वाले महारथ थे। अब मुझसे उनके नाम सुनो।

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान्भानुरेव च ।
साम्बो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥ ३३ ॥
पुष्करो वेदबाहुश्च श्रुतदेवः सुनन्दनः ।
चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

प्रद्युम्नः—प्रद्युम्न; च—तथा; अनिरुद्धः—अनिरुद्ध; च—तथा; दीप्तिमान् भानुः—दीप्तिमान तथा भानु; एव च—भी; साम्बः मधुः बृहत्-भानुः—साम्ब, मधु तथा बहद्भानु; चित्र-भानुः वृकः अरुणः—चित्रभानु, वृक तथा अरुण; पुष्करः वेद-बाहुः

च—पुष्कर तथा वेदबाहु; श्रुतदेवः सुनन्दनः—श्रुतदेव तथा सुनन्दन; चित्र-बाहुः विरूपः च—चित्रबाहु तथा विरूप; कविः न्यग्रोधः—कवि तथा न्यग्रोध; एव च—भी।

इनके नाम थे प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबाहु, विरूप, कवि तथा न्यग्रोध।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार यहाँ पर उल्लिखित अनिरुद्ध भगवान् कृष्ण का पुत्र था, प्रद्युम्न से उत्पन्न उनका प्रसिद्ध पौत्र नहीं।

एतेषामपि राजेन्द्र तनुजानां मधुद्विषः ।
प्रद्युम्न आसीत्प्रथमः पितृवद् रुक्मिणीसुतः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

एतेषाम्—इनमें से; अपि—तथा; राज-इन्द्र—हे राजाओं में प्रधान; तनु-जानाम्—पुत्रों में से; मधु-द्विषः—मधु असुर के शत्रु कृष्ण के; प्रद्युम्नः—प्रद्युम्न; आसीत्—था; प्रथमः—पहला; पितृवत्—अपने पिता के ही समान; रुक्मिणी-सुतः—रुक्मिणी का पुत्र।

हे राजाओं में श्रेष्ठ, मधु के शत्रु भगवान् कृष्ण द्वारा उत्पन्न किये गये इन पुत्रों में से रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न सर्वप्रमुख था। वह अपने पिता के ही समान था।

स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः ।
तस्यां ततोऽनिरुद्धोऽभूत्नागायतबलान्वितः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने (प्रद्युम्न ने); रुक्मिणः—रुक्मी (रुक्मिणी के बड़े भाई) की; दुहितरम्—पुत्री, रुक्मवती से; उपयेमे—विवाह किया; महा-रथः—महारथी; तस्याम्—उससे; ततः—तब; अनिरुद्धः—अनिरुद्ध; अभूत्—उत्पन्न हुआ; नाग—हाथी के; अयुत—दस हजार; बल—बल से; अन्वितः—युक्त।

महारथी प्रद्युम्न ने रुक्मी की पुत्री (रुक्मवती) से विवाह किया, जिसने अनिरुद्ध को जन्म दिया। वह दस हजार हाथियों जितना बलवान् था।

स चापि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रो जगृहे ततः ।
वज्रस्तस्याभवद्यस्तु मौषलादवशेषितः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने (अनिरुद्ध ने); च—तथा; अपि—आगे; रुक्मिणः—रुक्मी की; पौत्रीम्—पोती, (रोचना से); दौहित्रः—(रुक्मी) पुत्री का पुत्र; जगृहे—ग्रहण किया; ततः—तत्पश्चात्; वज्रः—वज्र ने; तस्य—उसके पुत्र रुप में; अभवत्—जन्म लिया; यः—जो; तु—लेकिन; मौषलात्—लोहे के बने मूसल से यदुओं की विनाश-लीला के बाद; अवशेषितः—बचा रहा।

रुक्मी की पुत्री के पुत्र (अनिरुद्ध) ने रुक्मी के पुत्र की कन्या (रोचना) से विवाह किया। उससे वज्र उत्पन्न हुआ, जो यदुओं के मूसल-युद्ध के बाद कुछ बचने वालों में से एक था।

प्रतिबाहुरभूत्तस्मात्सुबाहुस्तस्य चात्मजः ।
सुबाहोः शान्तसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

प्रति-बाहुः—प्रतिबाहु; अभूत्—हुआ; तस्मात्—उस (वज्र) से; सुबाहुः—सुबाहु; तस्य—उसका; च—तथा; आत्म-जः—पुत्र; सु-बाहोः—सुबाहु से; शान्त-सेनः—शान्तसेन; अभूत्—हुआ; शत-सेनः—शतसेन; तु—तथा; तत्—उसका (शान्तसेन का); सुतः—पुत्र ।

वज्र से प्रतिबाहु उत्पन्न हुआ, जिसका पुत्र सुबाहु था। सुबाहु का पुत्र शान्तसेन था और शान्तसेन से शतसेन उत्पन्न हुआ।

न ह्येतस्मिन्कुले जाता अधना अबहुप्रजाः ।
अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; एतस्मिन्—इस; कुले—परिवार में; जाताः—उत्पन्न; अधनः—निर्धन; अ-बहु—अनेक नहीं; प्रजाः—पुत्र; अल्प-आयुषः—कम उम्र वाले; अल्प—कम; वीर्याः—पराक्रम वाले; च—तथा; अब्रह्मण्याः—ब्राह्मण के प्रति निष्ठावान् नहीं; च—तथा; जज्ञिरे—उत्पन्न हुए ।

इस परिवार के ऐसा कोई भी व्यक्ति उत्पन्न नहीं हुआ, जो निर्धन हो या सन्तानहीन, अल्पायु, निर्बल या ब्राह्मण संस्कृति के प्रति उपेक्षावान् हो।

यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् ।
सङ्ख्या न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैर्नृप ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

यदु-वंश—यदुवंश में; प्रसूतानाम्—जन्म लेने वाले; पुंसाम्—मनुष्यों को; विख्यात—प्रसिद्ध; कर्मणाम्—कर्मों वाले; सङ्ख्या—गिनती; न शक्यते—सम्भव नहीं; कर्तुम्—कर पाना; अपि—भी; वर्ष—वर्षों में; अयुतैः—दस हजार; नृप—हे राजा (परीक्षित) ।

यदुवंश ने विख्यात कृत्यों वाले असंख्य महापुरुषों को जन्म दिया। हे राजन्, उन सबों की गिनती दस हजार से अधिक वर्षों में भी नहीं की जा सकती।

तिस्रः कोट्यः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च ।
आसन्यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति श्रुतम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

तिस्रः—तीन; कोट्यः—करोड़; सहस्राणाम्—हजार; अष्टा-अशीति—अट्ठासी; शतानि—सौ; च—तथा; आसन्—थे; यदु-कुल—यदुवंश के; आचार्याः—शिक्षक; कुमाराणाम्—बालकों के लिए; इति—इस प्रकार; श्रुतम्—सुना गया है ।

मैंने प्रामाणिक स्त्रोतों से सुना है कि यदुवंश ने अपने बालकों को शिक्षा देने के लिए ही

३,८८,००,००० शिक्षक नियुक्त किये थे।

सङ्ख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम् ।
यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते स आहुकः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सङ्ख्यानम्—गिनती; यादवानाम्—यादवों की; कः—कौन; करिष्यति—कर सकता है; महा-आत्मनाम्—महापुरुषों की; यत्र—जिनमें से; अयुतानाम्—दस हजारों के; अयुत—दस हजार (गुना); लक्षेण—(तीन) सौ हजार (व्यक्तियों) समेत; आस्ते—उपस्थित थे; सः—वह; आहुकः—उग्रसेन।

भला महान् यादवों की गणना कौन कर सकता है, जबकि उनमें से राजा उग्रसेन के साथ तीन नील (३,००,००,००,००,००,०००) परिचारक रहते थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इसकी व्याख्या की है कि राजा उग्रसेन के परिचारकों की संख्या असंख्य नीलों में न बताई जाकर तीन नील कही गई है। उन्होंने *कपिञ्जलाधिकरण* की व्याख्या (कबूतरों के संदर्भ) का नियम उद्धृत किया है। वेदों में कहीं पर आदेश है कि ''मनुष्य को चाहिए कि कुछ कबूतरों की बलि दे।'' इसका तात्पर्य असंख्य कबूतर नहीं अपितु केवल तीन कबूतर है क्योंकि वेद किसी विषय को अस्पष्ट नहीं छोड़ते हैं। मीमांसा के नियमानुसार, जब कोई संख्या न व्यक्त हो तो उसे तीन मानना चाहिए।

देवासुराहवहता दैतेया ये सुदारुणाः ।
ते चोत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा दृप्ता बबाधिरे ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

देव-असुर—देवताओं तथा असुरों के मध्य; आहव—युद्धों में; हताः—मारे गये; दैतेयाः—असुरगण; ये—जो; सु—अत्यन्त; दारुणाः—भयानक; ते—वे; च—तथा; उत्पन्नाः—उत्पन्न हुए; मनुष्येषु—मनुष्यों के बीच में; प्रजाः—जनता को; दृप्ताः—उद्धत; बबाधिरे—सताने लगे।

दिति की जंगली सन्तानों ने जो भूतकाल में देवताओं तथा असुरों के मध्य हुए युद्धों में मारी गई थीं, मनुष्यों के बीच जन्म लिया और वे उद्धत होकर सामान्य जनता को सताने लगे थे।

तन्निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवा यदोः कुले ।
अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकं नृप ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

तत्—उनके; निग्रहाय—दमन के लिए; हरिणा—भगवान् कृष्ण द्वारा; प्रोक्ता:—कहा गया; देवा:—देवतागण; यदो:—यदु के; कुले—कुल में; अवतीर्णा:—अवतरित; कुल—कुलों के; शतम्—एक सौ; तेषाम्—उनके; एक-अधिकम्—एक और; नृप—हे राजा (परीक्षित)।

इन असुरों का दमन करने के लिए भगवान् हरि ने देवताओं से यदुकुल में अवतार लेने के लिए कहा। हे राजन् ऐसे १०१ कुल थे।

तेषां प्रमाणं भगवान्प्रभुत्वेनाभवद्धरि: ।
ये चानुवर्तिनस्तस्य ववृधु: सर्वयादवा: ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उनमें से; प्रमाणम्—प्रमाण; भगवान्—भगवान्; प्रभुत्वेन—भगवान् होने के कारण; अभवत्—था; हरि:—भगवान् हरि; ये—जो; च—तथा; अनुवर्तिन:—निजी संगी; तस्य—उसके; ववृधु:—उन्नति की; सर्व—सारे; यादवा:—यादवों ने।

चूँकि श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, अतएत यादवों ने उन्हें अपना परम प्रमाण (सत्ता) मान लिया। और इन सबों में से, जो उनके घनिष्ठ संगी थे उन्होंने विशेष रूप से उन्नति की।

शय्यासनाटनालापक्रीडास्नानादिकर्मसु ।
न विदु: सन्तमात्मानं वृष्णय: कृष्णचेतस: ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

शय्या—सोते; आसन—बैठते; अटन—घूमते; आलाप—बात करते; क्रीड—खेलते; स्नान—नहाते; आदि—इत्यादि; कर्मसु—कार्यों में; न विदु:—वे अवगत न थे; सन्तम्—उपस्थित; आत्मानम्—वे स्वयं; वृष्णय:—वृष्णिजन; कृष्ण—कृष्ण में (लीन); चेतस:—जिनके मन।

वृष्णिजन कृष्णभावनामृत में इतने लीन थे कि वे सोते, बैठते, घूमते, बातें करते, खेलते, नहाते इत्यादि कार्य करते समय अपने ही शरीर की सुधि-बुधि भूल गये।

तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु स्व:सरित्पादशौचं
विद्विट्स्निग्धा: स्वरूपं ययुरजितपर श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्न: ।
यन्नामामङ्गलघ्नं श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्म:
कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रायुधस्य ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

तीर्थम्—तीर्थस्थान; चक्रे—बनाया; नृप—हे राजा (परीक्षित); ऊनम्—घट कर; यत्—जो (कृष्ण की महिमा); अजनि—उसने जन्म लिया; यदुषु—यदुओं के मध्य; स्व:—स्वर्ग की; सरित्—नदी; पाद—जिसके पैर; शौचम्—जो (जल) धोता है; विद्विट्—शत्रु; स्निग्धा:—तथा प्रियजन; स्वरूपम्—जिनके स्वरूप; ययु:—प्राप्त किया; अजित—अजेय; परा—तथा पूर्ण; श्री:—लक्ष्मी; यत्—जिसके; अर्थे—हेतु; अन्य—अन्य; यत्न:—प्रयास; यत्—जिसका; नाम—नाम; अमङ्गल—अशुभ को; घ्नम्—नष्ट करने वाला; श्रुतम्—सुना हुआ; अथ—अथवा; गदितम्—कहा गया; यत्—जिसके द्वारा; कृत:—उत्पन्न; गोत्र—

(विभिन्न मुनियों के) गोत्रों में; धर्मः—धर्म; कृष्णस्य—कृष्ण के लिए; एतत्—यह; न—नहीं; चित्रम्—आश्चर्यजनक; क्षिति—पृथ्वी के; भर—भार के; हरणम्—उतारने के लिए; काल—समय का; चक्र—पहिया; आयुधस्य—जिसका हथियार।

स्वर्ग की गंगा पवित्र तीर्थ है, क्योंकि उसका जल भगवान् के चरणों को पखारता है। किन्तु जब भगवान् ने यदुओं के बीच अवतार लिया, तो उनके यश के कारण पवित्र स्थान के रूप में गंगा नदी का महत्त्व कम हो गया। किन्तु कृष्ण से घृणा करने वालों तथा उनसे प्रेम करने वालों ने आध्यात्मिक लोक में उन्हीं के समान नित्य स्वरूप प्राप्त किया। अप्राप्य तथा परम आत्मतुष्ट लक्ष्मी जिनकी कृपा के लिए हर कोई संघर्ष करता है एकमात्र उन्हीं की हैं। उनके नाम का श्रवण या कीर्तन करने से समस्त अमंगल नष्ट हो जाता है। एकमात्र उन्हीं ने ऋषियों की विविध शिष्य-परम्पराओं के सिद्धान्त निश्चित किये हैं। इसमें कौन-सा आश्चर्य है कि कालचक्र, जिसका हथियार हो, उसने पृथ्वी के भार को उतारा?

तात्पर्य : श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध में आदि से अन्त तक वृन्दावन, मथुरा तथा द्वारका में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन हुआ है। जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती संकेत करते हैं यह श्लोक भगवान् श्रीकृष्ण की उन पाँच विशिष्ट महिमाओं का उल्लेख करके दसवें स्कंध की इति कर देता है, जो उनके विस्तार, अंश और अवतार भी प्रदर्शित नहीं कर पाते।

प्रथम तो यह कि जब भगवान् कृष्ण यदुवंश में अवतरित हुए, तो उनके यश से पवित्र गंगा की ख्याति कम हो गई। इसके पूर्व माता गंगा समस्त तीर्थों में सर्वाधिक पवित्र मानी जाती थीं, क्योंकि इसी के जल ने भगवान् वामन देव के चरणों को धोया था। यमुना नामक अन्य नदी, व्रज तथा मथुरा में भगवान् कृष्ण के चरणों की धूल का स्पर्श करके गंगा से भी बढ़ गई।

गंगाशतगुणा प्रायो माथुरे मम मण्डले।

यमुना विश्रुता देवि नात्र कार्या विचारणा॥

''मेरे मथुरा राज्य में विख्यात यमुना नदी गंगा से सैकड़ों गुना बड़ी है। हे देवि! इसमें कोई मतभेद नहीं हो सकता।'' (*वराह पुराण*)

दूसरे, भगवान् कृष्ण ने न केवल अपने शरणागत भक्तों को मोक्ष प्रदान किया, अपितु उन्हें भी, जो अपने को उनका शत्रु मानते थे। व्रज की गोपियों तथा अन्य भक्तों ने वैकुण्ठ में उनकी नित्य लीलाओं में सम्मिलित होकर उनका सान्निध्य प्राप्त किया, जबकि उनके द्वारा मारे गये शत्रु-असुरों को उनके

दिव्य स्वरूप में लीन होकर *सायुज्य मुक्ति* प्राप्त हुई। जब वे इस धराधाम में उपस्थित थे, तो उनकी कृपा उनके परिवार, मित्रों तथा सेवकों पर तो थी ही, प्रत्युत उनके शत्रुओं तथा उनके परिवारों, मित्रों तथा सेवकों पर भी थी। ब्रह्मा जैसे महापुरुषों ने इस तथ्य का उल्लेख किया हैं—*सद्वेषाद् इव पूतनापि सकुला त्वमेव देवापिता*—हे प्रभु! आपने पूतना तथा उसके परिवार वालों को अपने आपको इसीलिए दे डाला, क्योंकि उसने भक्त का वेश बना रखा था। (*भागवत* १०.१४.३५)

तीसरे, भगवान् नारायण की नित्य संगिनी देवी लक्ष्मी को जिनकी कृपा पाने के लिए बड़े बड़े देवता तुच्छ सेवा-कार्य करते हैं, व्रज में भगवान् कृष्ण के भक्तों की साक्षात् संगति प्राप्त करने का सुयोग नहीं मिल पाया। रासनृत्य में तथा कृष्ण की अन्य लीलाओं में भाग लेने की उत्सुकता होने पर भी तथा इसके लिए कठिन तपस्या करने पर भी वे स्वाभाविक आदर-भाव का अतिक्रमण नहीं कर पाईं। वृन्दावन में प्रदर्शित भगवान् कृष्ण का माधुर्य तथा घनिष्ठता ऐसा अद्वितीय प्रकार का ऐश्वर्य है, जो वैकुण्ठ तक में कहीं नहीं पाया जाता। जैसाकि श्री उद्धव कहते हैं—

यन् मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम्।

विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणांगम्॥

''अपनी आध्यात्मिक शक्ति के बल के प्रदर्शनार्थ भगवान् कृष्ण ने ऐसा रूप प्रकट किया, जो इस भौतिक जगत में उनकी मानव जैसी लीलाओं के उपयुक्त था। यह रूप उनके लिए भी अद्भुत सौभाग्य की सम्पत्ति का परम धाम था। इसके अंग इतने सुन्दर थे कि वे उनके शरीर के विभिन्न भागों में पहने गये आभूषणों के सौन्दर्य को बढ़ाने वाले थे।'' (भागवत ३.२.१२)

चौथे, कृष्ण नाम नारायण नाम से तथा भगवान् कृष्ण के अन्य अंशों के नामों से श्रेष्ठ है। *कृष्* तथा *ण*—ये दो अक्षर मिलकर समस्त अमंगल तथा मोह को नष्ट करने वाले हैं। उच्चारण करने पर कृष्ण नाम *श्रुतमथ* बन जाता है। कहने का तात्पर्य यह कि कृष्ण नाम का उच्चारण शास्त्रों (*श्रुत*) में वर्णित अन्य समस्त आध्यात्मिक विधियों की उत्तमता को पूर्णतया कुचल देता है (*मथ्नाति*)। *ब्रह्माण्ड पुराण* के शब्दों में—

सहस्त्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम्।

एकावृत्त्या तु कृष्णस्य मामैकं तत्प्रयच्छति॥

''केवल एक बार कृष्ण नाम उच्चारण करने से मनुष्य को वही लाभ मिलता है, जो तीन बार विष्णु के सहस्र नामों का उच्चारण करने पर मिलता है।''

पाँचवें, भगवान् कृष्ण ने दृढ़तापूर्वक धर्म रूपी बैल को उसके दया, तपस्या, शौच तथा सत्य रूपी चार पैरों पर पुन: स्थापित किया। इस तरह धर्म एक बार पुन: गोत्र अर्थात् पृथ्वी का रक्षक बन सका। श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय पर्वत, गौवों तथा ब्राह्मणों का सम्मान करने के लिए गोवर्धन पूजा के धार्मिक उत्सव को प्रचलित किया। वे स्वयं *गोत्र* अर्थात् पर्वत बने और उन्होंने ग्वालों की भेंटें स्वीकार कीं। यही नहीं, उन्होंने व्रज के दिव्य ग्वालों (गोपों) के *धर्म* अर्थात् प्रेममय स्वभाव का अनुशीलन किया, जिनका प्रेम उनके प्रति अद्वितीय था।

ये कुछेक अद्भुत गुण हैं भगवान् कृष्ण के अद्वितीय व्यक्तित्व के।

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो
यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ।
स्थिरचरवृजिनघ्न: सुस्मितश्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां वर्धयन्कामदेवम् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

जयति—शाश्वत यशस्वी बनकर जीवित रहता है; जन-निवास:—जो यदुवंश के सदस्यों जैसे मनुष्यों के बीच रहता है और जो समस्त जीवों का चरम आश्रय है; देवकी-जन्म-वाद:—देवकी के पुत्र रूप में जाने जाते हैं (भगवान् का कोई माता-पिता नहीं होता इसलिए वे देवकी के पुत्र जाने जाते हैं। इसी तरह वे यशोदा, वसुदेव तथा नन्द महाराज के पुत्र जाने जाते हैं); यदु-वर-परिषत्—यदुवंश के सदस्यों अथवा वृन्दावन के गोपों द्वारा सेवित (जो सभी भगवान् के नित्य संगी तथा नित्य दास हैं); स्वै: दोर्भि:—अपनी बाहुओं से या अर्जुन जैसे भक्तों से, जो उनकी भुजाओं जैसे हैं; अस्यन्—मारते हुए; अधर्मम्—असुरों को या अमंगलकारियों को; स्थिर-चर-वृजिन-घ्न:—समस्त चर तथा अचर जीवों के दुर्भाग्य के विनाशक; सु-स्मित—सदैव हँसते हुए; श्री-मुखेन—अपने सुन्दर मुखड़े से; व्रज-पुर-वनितानाम्—वृन्दावन की युवतियों की; वर्धयन्—बढ़ाते हुए; काम-देवम्—कामेच्छाओं को।.

भगवान् श्रीकृष्ण जन-निवास के नाम से विख्यात हैं अर्थात् वे समस्त जीवों के परम आश्रय हैं। वे देवकीनन्दन या यशोदानन्दन भी कहलाते हैं। वे यदुकुल के पथ-प्रदर्शक हैं और वे अपनी बलशाली भुजाओं से समस्त अमंगल को तथा समस्त अपवित्र व्यक्तियों का वध करते हैं। वे अपनी उपस्थिति से समस्त चर तथा अचर प्राणियों के अमंगल को नष्ट करते हैं। उनका आनन्दपूर्ण मन्द हासयुक्त मुख वृन्दावन की गोपियों की कामेच्छाओं को बढ़ाने वाला है। उनकी जय हो और वे प्रसन्न हों।

तात्पर्य : इस श्लोक का भावार्थ तथा श्रील प्रभुपाद द्वारा *श्रीचैतन्य-चरितामृत* (मध्य १३.७९) की

अंग्रेजी भाषा में की गई व्याख्या पर आधारित है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार श्रील शुकदेव गोस्वामी ने इस सुन्दर श्लोक की रचना उनको सान्त्वना प्रदान करने के लिए की जो यह शोक व्यक्त करते हैं कि भगवान् कृष्ण ने वर्तमान समय तक अपनी लीलाएँ प्रकट करना जारी क्यों नहीं रखा। यहाँ पर श्रीशुकदेव श्रोताओं को याद दिलाते हैं कि भगवान् इस संसार में—अपने पवित्र धाम, अपने नाम तथा अपनी महिमा के गायन में—शाश्वत रहते हैं। यह भाव *जयति* शब्द से व्यक्त किया गया है, जो वर्तमान काल का सूचक है, भूत काल का नहीं।

भगवान् श्रीकृष्ण में श्रील प्रभुपाद ने इस श्लोक की व्याख्या निम्नवत् की है, ''श्रील शुकदेव गोस्वामी भगवान् श्रीकृष्ण के सर्वश्रेष्ठ पद के विवरण को निम्न प्रकार से भगवान् का यशोगान करके समाप्त करते हैं ''हे भगवान् श्रीकृष्ण! आपकी जय हो। आप सबके हृदयों में परमात्मा रूप में स्थित हैं अतएव आप *जन-निवास* के नाम से विख्यात हैं—अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में निवास करने वाले। जैसाकि *भगवद्गीता* में पुष्टि की गई है—*ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति*—परमात्मा रूप में भगवान् हर व्यक्ति के हृदय में निवास करते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि श्री भगवान् के रूप में श्रीकृष्ण का पृथक् अस्तित्व नहीं है। मायावादी दार्शनिक परब्रह्म की सर्वव्यापकता के लक्षण को स्वीकार करते हैं किन्तु जब परब्रह्म या परमेश्वर प्रकट होते हैं, तो वे विचार करते हैं कि परब्रह्म भौतिक प्रकृति के नियंत्रण में प्रकट होते हैं। क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण देवकीसुत के रूप में प्रकट हुए थे, अतः मायावादी दार्शनिक श्रीकृष्ण को इस भौतिक जगत में जन्म लेने वाला सामान्य प्राणी मानते हैं। अतएव शुकदेव गोस्वामी उनको चेतावनी देते हैं कि *देवकीजन्मवादः,* अर्थात् यद्यपि श्रीकृष्ण देवकी-पुत्र के रूप में प्रसिद्ध हैं, किन्तु वे परमात्मा अथवा सर्वव्यापी भगवान् हैं।

किन्तु भक्तगण इस *देवकीजन्मवादः* शब्द को भिन्न रूप में लेते हैं। वे समझते हैं कि वस्तुतः श्रीकृष्ण माता यशोदा के पुत्र थे। यद्यपि श्रीकृष्ण सर्वप्रथम देवकी के पुत्र रूप में प्रकट हुए, किन्तु तत्काल माता यशोदा की गोद में चले गये थे और माता यशोदा तथा नन्द महाराज ने उनकी बाल-लीलाओं का आनन्द लूटा। जब वसुदेव ने नन्द महाराज तथा यशोदा से कुरुक्षेत्र में भेंट की थी तो, उन्होंने यह तथ्य स्वयं स्वीकार किया था। उन्होंने यह स्वीकार किया था कि श्रीकृष्ण तथा बलराम वस्तुतः माता यशोदा तथा नन्द महाराज के पुत्र थे। देवकी तथा वसुदेव उनके नाम के माता-पिता थे।

तत्पश्चात् श्रीशुकदेव गोस्वामी ने *यदुवरपरिषत्*—अर्थात् यदुवंश की सभा द्वारा सम्मानित कह कर तथा अनेक प्रकार के असुरों का वध करने वाले के रूप में भगवान् की प्रशंसा की है। भगवान् श्रीकृष्ण अपनी विभिन्न भौतिक शक्तियों का प्रयोग करके सारे असुरों का वध कर सकते थे, किन्तु उन्हें मोक्ष देने के उद्देश्य से वे उनका वध अपने हाथों से करना चाहते थे। असुरों का वध करने के लिए ही श्रीकृष्ण को इस भौतिक जगत में आने की कोई आवश्यकता नहीं थी। उनके व्यक्तिगत प्रयास के बिना ही उनकी इच्छामात्र से सैकड़ों-हजारों असुरों का वध हो सकता था, किन्तु वस्तुत: वे अपने शुद्ध भक्तों के लिए, एक बालक के रूप में माता यशोदा तथा नन्द महाराज के साथ क्रीड़ा करने तथा द्वारकावासियों को सुख प्रदान करने के लिए अवतीर्ण हुए थे। असुरों का वध एवं भक्तों की रक्षा करके श्रीकृष्ण ने असली धर्म के सिद्धान्त की स्थापना की, जो कि केवल भगवत्प्रेम है। भगवान् के प्रति प्रेम के वास्तविक धर्म का अनुसरण करके *स्थिरचर* नाम से जाने जानेवाले जीव भी समस्त भौतिक दूषणों से मुक्त हो गये तथा आध्यात्मिक लोक चले गये। *स्थिर* का अर्थ है : पेड़-पौधे जो चल नहीं सकते तथा *चर* का अर्थ है : चलने-फिरने वाले पशु, विशेष रूप से गौवें। अपनी उपस्थिति में श्रीकृष्ण ने वृन्दावन में तथा द्वारका में अपने दर्शन करने वाले तथा सेवा करने वाले समस्त वृक्षों, वानरों तथा अन्य पौधों एवं पशुओं को मुक्त कर दिया।

''भगवान् का सुयश विशेष रूप से गोपियों तथा द्वारका की रानियों को सुख देने के कारण था। श्रीशुकदेव गोस्वामी भगवान् श्रीकृष्ण का यशोगान उनकी मोहनी मुस्कान के लिए करते हैं, जिसके द्वारा श्रीकृष्ण ने न केवल वृन्दावन की गोपियों को मुग्ध कर लिया, अपितु द्वारका में रानियों को भी मोह लिया। इस सम्बन्ध में प्रयुक्त शब्द *वर्धयन् कामदेवम्* है। वृन्दावन में अनेक गोपियों के किशोर सखा के रूप में तथा द्वारका में अनेक रानियों के पति रूप में श्रीकृष्ण ने उनके साथ आनन्द लेने के लिए उनकी कामेच्छा में अभिवृद्धि की। आत्म-साक्षात्कार या ईश-साक्षात्कार के लिए साधारणतया व्यक्ति को हजारों वर्षों तक कठोर तपस्या करनी पड़ती है, तब कहीं ईश्वर का साक्षात्कार सम्भव होता है। किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण को सखा अथवा पति के रूप में भोगने की अपनी कामेच्छा में अभिवृद्धि के द्वारा ही गोपियों तथा द्वारका की रानियों ने सर्वश्रेष्ठ प्रकार की मुक्ति प्राप्त की।''

इस तरह श्रील प्रभुपाद शुकदेव गोस्वामी द्वारा लिखित इस श्लोक के अर्थ पर अद्‌भुत प्रकाश

डालते हैं, जो भगवान् कृष्ण की लीलाओं का सारांश प्रस्तुत करता है।

इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयात्त-
लीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि ।
कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य
श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार से (वर्णित); परस्य—ब्रह्म का; निज—अपना; वर्त्म—मार्ग (भक्ति का); रिरक्षया—रक्षा करने की इच्छा से; आत्त—धारण किये हुए; लीला—लीलाओं के लिए; तनोः—विविध रूप; तत्—इनमें से प्रत्येक को; अनुरूप—उपयुक्त; विडम्बनानि—अनुकरण करते हुए; कर्माणि—कर्मों को; कर्म—भौतिक कर्म के फल; कषणानि—जो नष्ट करते हैं; यदु-उत्तमस्य—यदुओं में श्रेष्ठ के; श्रूयात्—मनुष्य सुने; अमुष्य—उसके; पदयोः—पैरों के; अनुवृत्तिम्—पालन करने का अधिकार; इच्छन्—इच्छा करते हुए।

अपने प्रति भक्ति के सिद्धान्तों की रक्षा करने के लिए यदुश्रेष्ठ भगवान् कृष्ण उन लीला-रूपों को स्वीकार करते हैं, जिनका यहाँ पर *श्रीमद्भागवत* में महिमा-गान हुआ है। जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक उनके चरणकमलों की सेवा करने का इच्छुक हो, उसे उन कार्यकलापों को सुनना चाहिए, जिन्हें वे प्रत्येक अवतार में सम्पन्न करते हैं—वे कार्यकलाप, जो उनके द्वारा धारण किए जाने वाले रूपों के अनुरूप हैं। इन लीलाओं के वर्णनों को सुनने से सकाम कर्मों के फल विनष्ट होते हैं।

मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्द-
श्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति ।
तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं
ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

मर्त्यः—मर्त्य; तया—ऐसे; अनुसवम्—निरन्तर; एधितया—वर्धमान; मुकुन्द—कृष्ण विषयक; श्रीमत्—सुन्दर; कथा—कथाओं के; श्रवण—सुनने; कीर्तन—कीर्तन करने; चिन्तया—तथा चिन्तन करने से; एति—जाता है; तत्—उसके; धाम—घर को; दुस्तर—जिससे बचा न जा सके; कृत-अन्त—मृत्यु के; जव—बल के; अपवर्गम्—मोक्ष को; ग्रामात्—संसारी घर से; वनम्—जंगल को; क्षिति-भुजः—राजा (यथा प्रियव्रत); अपि—भी; ययुः—गये; यत्—जिसको; अर्थाः—प्राप्त करने के लिए।

नित्यप्रति अधिकाधिक निष्ठापूर्वक भगवान् मुकुन्द की सुन्दर कथाओं के नियमित श्रवण, कीर्तन तथा ध्यान से मर्त्य प्राणी को भगवान् का दैवीधाम प्राप्त होगा, जहाँ मृत्यु की दुस्तर शक्ति का शासन नहीं है। इसी उद्देश्य से अनेक व्यक्तियों ने, जिनमें बड़े-बड़े राजा सम्मिलित हैं अपने-अपने संसारी घरों को त्याग कर जंगल की राह ली।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* के दशम स्कन्ध के लिए यह श्लोक फल-श्रुति है अर्थात् इसके श्रोता के लिए सफलता का वायदा है। भक्ति विधि का शुभारम्भ भगवान् विषयक कथाओं के श्रवण से होता है। जब कोई व्यक्ति इन कथाओं को समुचित रीति से सुन चुकता है, तो वह अन्यों के लाभ के लिए उनका कीर्तन कर सकता है और उनकी महत्ता पर विचार कर सकता है। इससे भक्ति के सिद्धान्तों में श्रद्धापूर्वक दृढ़ रहा जा सकता है और इसका समापन भगवान् कृष्ण की परम श्रद्धा में होता है। ऐसी पूर्ण श्रद्धा से मनुष्य को भगवान् की अन्तरंग सेवा करने का अधिकार प्राप्त होता है और यथासमय वह भगवद्धाम में शाश्वत दिव्य जीवन के लिए वापस जाता है।

दसवें स्कंध की टीका को अपने पूज्य भगवान् के चरणकमलों पर विनीत भाव से भेंट करते हुए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती प्रार्थना करते हैं—

मद्गवीरपि गोपालः स्वीकुर्यात् कृपया यदि।

तदैवासां पयः पीत्वा हृष्येयुस्तत्प्रिया जनाः॥

''यदि भगवान् गोपाल कृपापूर्वक मेरी शब्द-रूपी गौवों को स्वीकार करें, तो उनके प्रिय भक्तगण उनको सुनने से उत्पन्न अमृत तुल्य दूध पीने का आनन्द उठा सकते हैं।''

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''भगवान् कृष्ण की महिमाओं का सारांश'' नामक नब्बेवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

श्रीमद्भागवत का दसवाँ स्कन्ध श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की तिरोधान जयन्ती २७ दिसम्बर १९८८ को पूर्ण हुआ।